IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

बिहार के प्रमुख किसान आन्दोलन

डॉ रंजीत कुमार

+2 Teacher. Ashok Inter School Daudnagar, Aurangabad Bihar-824143

अंग्रेजों द्वारा भारतीय कृषि व्यवस्था में व्यापक परिर्वतन किये जाने से देश के कृषि जगत में हलचल पैदा हो गई तथा भारतीय कृषक निर्धनता की बेड़ियों में जकड़ गये। परिणामस्वरूप 18वीं सदी एवं 19वीं शताब्दी में कृषकों की अशांति, विरोधों तथा प्रतिरोधों में प्रकट हुई। जिसका मुख्य उद्देश्य समान्तशाही बन्धनों को तोड़ना अथवा ढ़ीला करना था। उन्होंने भूमिभार कर बढ़ाने, बेदखल तथा साहूकारों की ब्याजखोरी के विरूद्ध विरोध प्रकट किया। उनकी मांगों में मौरूसी अथवा दखिलकार अधिकार और भारक के रूप में अन्न के स्थान पर धन का निश्चित करना था। वर्ग जागृति की अनुपस्थिति में, अथवा कृषकों के सुव्यवस्थित संगठन न होने के कारण कृषकों के विद्रोह ने राजनीतिक रूप धारण नहीं किया, परन्तु 20वीं शताब्दी में वर्ग जागृति आयी तथा किसान सभाओं की स्थापना हुई।[1]

लेकिन बिहार के इतिहास में किसान संघर्षों को केवल 20वीं शताब्दी की परिघटना नहीं माना जा सकता। खुद 19वीं सदी का बिहार ही अनेक बहादुराना किसान संघर्ष का साक्षी रहा है,[2] जैसे बिहार का पहाड़िया विद्रोह (1778) के साथ ही आदिवासी किसान जनता ने कई बार बगावत का झंडा ऊंचा किया। छोटानागपुर के तमार में 1785–1795 में आदिवासियों ने विद्रोह कर दिया। इसके बाद चुआर आंदोलन (1797–1800) के दौरान किसानों का विद्रोह हुआ। इसके बाद मुंडा आदिवासियों ने 1820–1832 में संघर्ष किया। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में बड़े पैमाने पर बंगाल से नीलहे बागान मालिकों ने बिहार में जाकर शरण ली और यहां के किसानों को अपने शोषण का शिकार बनाया। उसके खिलाफ किसानों ने सबसे पहले 1860–67 ई0 में मधुबनी के पंडौल नामक स्थान में विद्रोह किया। 1883–84 ई0 में किसानों ने दरभंगा राज के खिलाफ आंदोलन किया। 1885–86 में संथालों में भी बगावत किया।[3] पुनः 1888–1901 का मुंडा विद्रोह आदि सर्वाधिक उल्लेखनीय किसान विद्रोह के रूप में जाने जाते हैं। फिर भी ये सब किसी राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य और आधुनिक विचारों से दूर खुद स्थानीय किसान नेताओं की रहनुमाई पर निर्भर किसान

विद्रोहों की अलग–अलग घटनाएँ हैं। इसके विपरीत बाहर से किया गया हस्तक्षेप वर्त्तमान शताब्दी के किसान संघर्षों की विशेषता रही, और यह विशेषता ठीक 1917 के चम्पारण सत्याग्रह के दिनों से ही परिलक्षित होती है जब गांधीजी ने पहली बार किसानों के बीच अपना प्रयोग शुरू किया।[4] इसी परिप्रेक्ष्य हम बिहार के प्रमख किसान संघर्ष को देख सकते हैं, जो निम्न हैः–

चम्पारण का किसान आंदोलनः

चम्पारण में निलहों के द्वारा किसानों पर तरह–तरह के अत्याचार किये जाते थे। किसी किसान में इतनी हिम्मत नहीं थी वे नील की खेती करने से इन्कार कर दें। यदि कोई हिम्मत करते तो उस पर हजार तरह के जुल्म किये जाते। उनके घर और खेत लूट किये जाते। खेत मवेशियों से चरा दिये जाते, जुर्माना वसूल किया जाता। उन्हें पीटा भी जाता था। इस डर के मारे प्रायः सभी रैयत तीनकठिया मानकर बीघा पीछे तीन कट्ठा नील बो दिया करते। जब नील तैयार हो जाता तो उसे काटकर कोठी पर पहुंचा देना पड़ता था। इसके लिए रैयतों को कुछ खास नहीं मिलता। पुलिस एवं कचहरी निहलों की ही मदद करते थे। तंग आकर किसानों ने अनेक बार बगावत की लेकिन उनके सभी आंदोलन दबा दिये गये। 1907–08 ई0 में निलहों के अत्याचारों के खिलाफ किसानों ने एक गुप्त संगठन कायम किया। 'बिहारी' के सम्पादक महेश नारायण ने सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित किया। बिहार प्रान्तीय सम्मेलन में भी समय–समय पर निलहों के अत्याचारों की भर्त्सना की गयी। 10 अप्रैल 1914 को ब्रज किशोर प्रसाद ने बिहार प्रान्तीय सम्मेलन में अध्यक्षीय पद से भाषण देते हुए चम्पारण के किसानों पर हो रहे अत्याचारों को समाप्त करने का बल दिया। 1916ई0 के कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन में ब्रजकिशोर प्रसाद चम्पारण के एक मध्यवर्गीय किसान राजकुमार शुक्ल के साथ महात्मा गांधी से भेट कर उन्हें सारी बातों से अवगत कराया। तद्नुसार महात्मा गांधी 10 अप्रैल,1917 ई0 को पटना पहुंचे। 15 अप्रैल को वे मोतीहारी पहुंचे। स्थानीय प्रशासन ने उनके आगमन पर रोक लगा दी और गांधीजी को गिरफ्तार कर लिया गया। अदालत में उन्होंने अपना अपराध स्वीकार किया लेकिन इस बात पर जोर दिया कि उन्होंने ऐसा दमन का प्रतिकार करने के लिए किया है। अंततः प्रशासन को झुकना पड़ा। बिहार के उपराज्यपाल एडवर्ड अलबर्ट गेट ने एक जांच समिति बनायी जिसके एक सदस्य गांधी जी भी थे। इस समिति की अनुसंशा पर ही दमनकारी तीनकठिया व्यवस्था को समाप्त कर दिया गया। रैयत का इसके अलावा और भी सुविधाएँ प्राप्त हुई। देखते –ही–देखते गांधीजी पूरे भारत के मानस पटल पर छा गये। भारत में उनके सत्याग्रह एवं अहिंसा के अमोध अस्त्र का पहला सफल परीक्षण हुआ था।[5] इस तरह निलहो के विरूद्ध दीर्घकालीन संघर्ष का अंतिम दौर था चम्पारण का किसान आन्दोलन। इसके साथ ही बिहार के किसान संघर्ष ने राष्ट्रीय रंगभूमि में पदार्पण किया।

इस आन्दोलन को व्यापक जन समर्थन मिला, क्योंकि जिले की पूरी आबादी किसी न किसी कारण से निलहे साहबों के खिलाफ थी। खेतिहर मजदूर असंतुष्ट थे, क्योंकि उन्हें प्रचलित दरों पर मजदूरी नहीं मिलती थी, ऊपर से उन्हें बेगार के लिए मजबूर किया जाता था। पट्टेदार

लोग भी तिनकठिया प्रथा मानने की मजबूरी, नील की कीमत बेहद कम होने, गाड़ी–सट्टी के अलाभकारी होने और अबवाव तथा दस्तुरी जैसे उगाही, इत्यादि की वजह से निलहों के खिलाफ थे और इसके अलावे वे निलहे साहबों से उनके गुमाश्तों द्वारा तंग किये जाने के वजह से भी विक्षुब्ध थे। मोचियों की हालत इसलिए दयनीय थी कि खाल बटोरने के उनके अधिकार को निलहों ने छीन लिया था। छोटे दुकानदार इसलिए दुःखी थे कि उनकी खरीद बिक्री का दायरा सीमित कर दिया गया था और उन पर गैरकानूनी कर लाद दिए गये थे। सुदखोर व व्यापारी भी अपने व्यवसाय के विस्तार में बगान मालिकों को बाधा समझते थे, क्योंकि नील की खेती से सीधे तौर पर सम्बन्धित नहीं थे इसलिए वे बगान मालिकों के विरूद्ध किसी प्रत्यक्ष झगड़े में नहीं फसें, लेकिन चूँकि वे इस संभावना से भलीभाँति वाकिफ थे कि बागान मालिकों के चले जाने पर स्वयं उनकी शक्ति और मुनाफे में बेहतर इजाफा होगा, आज उन्होंने इस आन्दोलन को जारी रखने के वास्ते तमाम किस्म की भौतिक सहायता प्रदान की।[6]

किस्म–किस्म के ये सभी तत्व जमींदारों, नील फैक्टरी के भूतपूर्व कर्मचारियों एवं शिक्षकों के हाथ रहा। स्थानीय नेताओं मे सबसे प्रमख और गांधीजी को चम्पारण लाने वाले राजकुमार शुक्ल स्वयं एक सूदखोर थे। अन्य महत्वपूर्ण स्थानीय नेता–जैसे, लौकरिया के खेन्धार राम, आन्दोलन के लिए धन और तमाम तरह की भौतिक सहायता जुटाने वाले मोतिहारी के शाह और बेतिया तथा मोतिहारी के मारवाड़ी ये सभी लोग सूदखोर भी थे और व्यापारी भी। उस समय देश अंग्रेजो के खिलाफ गुस्से व असंतोष से उबल रहा था और गांधीजी तेजी से एक लोकप्रिय नेता के रूप में उभर रहे थे। उनकी देहाती भाव–भंगिमा, दौलत वालों और यहाँ तक कि सूदखोरों की हिमायत करने के रवैये तथा सत्याग्रह आंदोलन के अहानिकार स्वरूप के चलते स्थानीय नेतृत्व ने उन्हें सहज ही स्वीकार कर लिया।[7]

आन्दोलन ज्यादा दिनों तक नहीं चल पाया और एक सीमित दायरे मे ही कैद रहा। यह भूमि सम्बंधी गंभीर मुद्दों को छू तक नहीं सका। नील की खेती जल्द ही बन्द कर दी गयी, पर इसका वास्तविक कारण सत्याग्रह नहीं बल्कि सस्ते व कृत्रिम रंग का आविष्कार था। गांधीजी का सारा प्रयोग उस समझौता परस्त भारतीय पूंजीपति वर्ग की कार्य–दिशा के अनुरूप था, जो ब्रिटिश साम्राज्यवादियों से केवल अधिकाधिक रियायतें प्राप्त करने के उद्देश्य से ही किसान समुदाय का इस्तेमाल करता था और किसी भी व्यापक, जुझारू आन्दोलन में किसानों को शामिल करने से बुरी तरह खौफ खाता था। राष्ट्रवाद के नाम पर गांधी ने देशी जमींदारों के खिलाफ होने वाले हर किसान आन्दोलन को निरूत्साहित किया। जिसे हम बाद के वर्षों में हुए स्वामी विद्यानन्द के किसान आंदोलन तथा स्वामी सहजानंद के किसान–सभा आंदोलन में देख सकतें हैं।

निश्चित तौर पर हम कह सकते हैं कि चम्पारण सत्याग्रह के आरम्भ से ही धनी किसानों, जमींदारो ने शामिल होकर आंदोलन की व्यापकता को सीमित कर दिया। जब गांधीजी ने इसकी जांच में जमींदारो और किसानों के बीच के आर्थिक सम्बंधों को गहराई से छानबीन की कोशिश की तो स्थानीय राजनीतिज्ञों ने इसे रोक दिया क्योंकि वे जमींदार वर्ग को अपने विरोध में खड़ा करना नहीं चाहते थे। गांधीजी का यह विचार था कि ऐसा कोई आंदोलन जो देश के विभिन्न वर्गों के बीच हो वर्ग–विरोध पैदाकर स्वतंत्रता आंदोलन को कमजोर बनायेगा। अतः किसान आंदोलन को राष्ट्रवाद का स्वरूप देकर ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ संघर्ष को तेज किया जा सकता है। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए गांधी जी ने ' चम्पारण अग्रेरियन इन्क्वारी कमिटी' की रपट को एक छोटे से पारे में समेट दिया था। इससे मुख्यतः तीनकठिया पद्धति की खेती से नील की कीमत वृद्धि से सिर्फ धनी किसानों को लाभ पहुंचाता था न कि गरीब मजदूरों को। इस प्रकार गांधीजी का कृषक मजदूरों से सम्पर्क सतही रह गया और किसानों के प्रति उनका रवैया था जो राजनीतिज्ञ या फिर करूणमय ही रह गया।[8]

चम्पारण सत्याग्रह के बारे में प्रोफेसर धनागरे ने ठीक ही लिखा है कि चम्पारण की घटनाओं ने भविष्य में गांधीवादी किसान आन्दोलन के आकार को स्पष्ट कर दिया था।[9] उनके अनुसार गांधीवादी किसान आंदोलन, की प्रमख विशेषताएँ निम्न थीः–

01. कृषि सम्बंधी सामाजिक संरचना में कोई बुनियादी परिर्वतन की बात न करके सतही समस्याओं को उठाना।
02. अधिकारियों से समझौते के साथ आन्दोलन की वापसी।
03. सम्पन्न किसानो का समर्थन।
04. किसानों के बीच पैदा हो रही क्रांतिकारी भावनाओं को समाप्त करने के लिए कुछ रचनात्मक कार्यक्रमों के कार्यान्वयन की कोशिश।[10]

अगर ' बिहार प्रदेश कांग्रेस सभा' के आंदोलन के पूर्व के किसान आन्दोलन की समीक्षा की जाए तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि बिहार के अधिकांश कांग्रेसी नेता पक्के गांधीवादी थे। गांधीवादी तरीके अपनाने के कारण इनका कार्य काश्तकारों के दुःखों की जांच के लिए आयोग बैठाने, जमींदारों को किसानों के साथ अच्छा व्यवहार करने की सलाह देने तथा किसानों को बराबर संयत रहने की आज्ञा देने के आगे जाने की कल्पना ही नहीं कर सकते थे। इसका कारण यह भी माना जाता है कि कांग्रेस के अधिकांश नेता ऊँची जाति के तथा छोटे जमींदार या अच्छे किसान परिवार के थे।[11]

ताना भगत आन्दोलनः–

ताना भगत आन्दोलन भी मुख्यतः किसानों से जुड़ा आन्दोलन था। इसकी शुरूआत 21 अप्रैल, 1914 को वर्त्तमान झारखण्ड प्रान्त के गुमला जिला में हुई इस आन्दोलन के प्रणेता जतरा भगत थे। जतरा भगत के द्वारा शुरू किये गये आन्दोलन के कई प्रमुख कारण थे। मुंडा लोगों की तरह उराँव लोग भी छोटानागपुर क्षेत्र में बहुसंख्यक थे और उनके उपर भी राज की नीति ने कहर ढाया था। इसके कारण उनका आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक ढाँचा चरमरा गया 1793ई0 में गवर्नर जनरल ने स्थायी बन्दोवस्त की राजस्व व्यवस्था को लागू किया और छोटानागपुर के क्षेत्र को भी इस व्यवस्था के अंतर्गत ले आया गया। अब आदिवासियों को समय पर नियमित रूप से राजस्व अदा करना था अन्यथा उनकी जमीनें नीलाम हो जानी थी। छोटानागपुर राजा के नेतृत्व में जमींदारों ने आदिवासियों के उपर कहर ढाना शुरू किया इन लोगों ने जमींदारों के साथ मिलकर आदिवासियों की बहु–बेटियों की इज्जत लूटनी शुरू की। इस स्थिति में आदिवासियों का जीवन बेहाल हो गया और उनके पास अपनी स्थिति में सुधार के लिए आंदोलन के आलावा कोई दूसरा विकल्प नहीं रहा। अतएव जतरा भगत के नेतृत्व में आदिवासियों ने आन्दोलन शुरू कर दिया। जिसे ताना भगत आन्दोलन कहा जाता है।[12]

स्वामी विद्यानंद का किसान आंदोलनः–

महात्मा गांधी के चम्पारण सत्याग्रह से प्रभावित होकर छपरा जिला के विशूभरण प्रसाद ने दरभंगा जिला के दरभंगा राज एवं उनके गुमाश्तों की ज्यादतियों के खिलाफ जबर्दस्त किसान आन्दोलन की शुरूआत की। दरभंगा राज के गुमाश्तों की ज्यादातियों के खिलाफ किसानों ने 1883–1884 ई0 में भी विद्रोह किया था। इसे कुचलने का प्रयास किया गया था। अन्ततः दरभंगा राज के द्वारा कुछ सुविधाएँ देने के बाद विद्रोह शांत हो गया। विशूभरण प्रसाद स्वामी विद्यानन्द के नाम से विख्यात हुए।[13] इनका सम्बंध कायस्थ परिवार के सम्पन्न किसान वर्ग से था। उन्होनें मधुबनी सबडिविजन के नरार गांव के किसानों को संगठित कर जून 1919 ई0 में आन्दोलन की शुरूआत की। उन्होनें सर्वप्रथम दरभंगा महाराज के अधीन किसानों की

दयनीय अवस्था को उजागर करने का प्रयास एवं अपने अंसतोष को व्यक्त करने के लिए धार्मिक, सामाजिक स्वरूप को लेकर आरम्भ की। इस आन्दोलन की विशेषता थी कि दीन–हीन किसानों के समस्याओं को आगे लाना। जहाँ एक तरफ धनी किसान–वर्ग तथा जमींदार बढ़ी हुई महंगाई का लाभ उठा नहीं रहे थे वहीं किसान, निम्न मध्यवर्गीय किसान आर्थिक उचाँइयों की मार सह रहे थे जिसका नेतृत्व स्वामी विद्यानंद कर रहे थे।[14] शुरू में किसानों की माँग थी कि उन्हें जंगल से फल एवं लकड़ी लेने का अधिकार दिया जाए। शीघ्र ही यह आन्दोलन करीब सतरह अन्य गाँवों में भी फैल गया। स्वामी विद्यानंद ने कांग्रेस से सहयोग माँगा। शुरू में कांग्रेस ने कुछ सहानुभूति का प्रदर्शन किया। लेकिन शीघ्र ही दरभंगा के महाराजा ने कांग्रेस ने इस आन्दोलन के प्रति उदासीनता का रूख अपनाया। आन्दोलन धीरे–धीरे हिंसात्मक होता चला गया। स्वामी विद्यानंद ने किसानों की दशा सुधारने के लिए दरभंगा के बाहर भी गये। सुपौल में नवम्बर 1919 में एक सभा कें दौरान दरभंगा राज के कहने पर ब्रिटिश फौज द्वारा विद्यानंद को रोका गया।[15] कांग्रेस के बहुत नेता विद्यानंद के आन्दोलन के खिलाफ थे। क्योंकि वे जमींदारी पृष्ठभूमि के थे और वे नहीं चाहते थे कि जमींदारी प्रथा के विरूद्ध कोई आंदोलन जोर पकड़े।[16] स्वामी विद्यानंद द्वारा चलाये गये आंदोलन का विस्तार धीरे–धीरे पूर्णिया,सहरसा, भागलपुर और मुंगेर जिले तक हो गया। स्वामी विद्यानंद 1920 में अपने तीन सहयोगियों के साथ मान्टेंग्यू–चेम्सफोर्ड सुधार के दौरान हुए विधानसभा के चुनाव में जीते थे।[17] जमींदारों द्वारा किसानों के उत्पीड़न से उद्वेलित होकर विद्यानंद ने समस्तीपुर के एक सभा में कहा कि किसानों को वह अपनी उत्पीड़न के खिलाफ जमींदारों के विरूद्ध आंन्दोलन करें।[18] भयभीत होकर दरभंगा महाराज के नेतृत्व में 1922 ई0 में प्रांतीय किसान सभा का गठन किया गया और इस बात का दावा किया गया कि यही संस्था सही अर्थो में किसानों का शुभचिंतक है। इस संस्था के सचिव के रूप में राय बहादुर शिव शंकर झा ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वस्तुतः किसानों ने इस संस्था को कभी भी गम्भीरता से नहीं लिया। दरभंगा राज ने किसानों के असंतोष को दूर करने के लिए कुछ रियायतों की घोषणा की और स्वामी विद्यानंद का किसान आन्दोलन धीर–धीरे समाप्त हो गया।[19] बिहार के कांग्रेसी नेताओं ने दरभंगा महाराज के खिलाफ चल रहे आन्दोलन को समाप्त करने में दरभंगा महाराज की काफी मदद की।[20]

कांग्रेसियों की यह राय थी कि किसानों की समस्यओं को गांधीजी द्वारा चलाए गये सत्याग्रह आन्दोलनों के द्वारा ही उठाया जाए ताकि यह वर्ग–संघर्ष का स्वरूप ग्रहण नहीं कर सके। इस बात का प्रमाण हमें असहयोग आन्दोलन के दौरान मिलता है। जब गांधीजी के एक आह्वान पर लाखों किसानों ने भाग लिया।[21]

स्वामी सहजानंद सरस्वती का किसान–सभा का संगठनः–

सहजानंद एक पक्के कांग्रेसी और सुधारवादी थे और उन्होंने किसान आन्दोलन की शुरूआत इसी दृष्टिकोण से की। लेकिन अपने विकास की स्वभाविक प्रक्रिया में न तो किसान सभा पटना तक ही सीमित रही, न ही उसका लक्ष्य सुधार–समझौते तक सीमित रहा।[22] सहजानंद का विचारों का क्रम– विकास बिहार के किसान–संघर्ष की बदलती धारा और किसान सभा के क्रांतिकारीकरण की प्रक्रिया की सुन्दर झाँकी प्रस्तुत करता है।

किसान सभा के निर्माण के समय उनका उद्देश्य किसान संघर्ष को प्रोत्साहित करना नहीं, बल्कि ग्रामीण इलाकों में फैल रहे तनाव की रोकथाम करना था। बाद में सहजानंद ने खुद भी स्वीकार किया था कि "किसान सभा बनाने के पीछे मेरा उद्देश्य केवल प्रचार और आंदोलन के जरिये किसानों का दुःख दूर करना था और इसके जरिये किसानों और जमींदारों के बीच झगड़े खत्म कर देना था।[23] अभी बकाशत का मुद्दा अनसुलझा ही पड़ा था और उपर से सरकार ने पट्टेदारी में संशोधन के लिए 1929 में एक विधेयक लाने का प्रस्ताव पेश कर दिया। यह विधेयक यदि पास हो जाता तो पट्टेदारों के हितों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता। इसी निर्णायक घड़ी में 1929 में सोनपुर मेले के दौरान किसानों के सालाना जलसे में 'बिहार प्रान्तीय किसान सभा' का गठन हुआ और सहजानन्द इस संगठन के अध्यक्ष बने।[24]

1929 ई0 में बिहार प्रदेश किसान सभा की स्थापना होते ही महत्वपूर्ण घटना यह हुई कि पट्टेदारी कानून में संशोधन का प्रस्ताव वापस ले लिया गा। किसानों ने इसे एक महत्वपूर्ण जीत समझा और इससे उनका मनोबल बुलंदी पर पहुंच गया और तब शुरू हुआ उथल–पुथल भरी राजनीतिक व आर्थिक घटनाओं का सिलसिला।[25] सविनय अवज्ञा आन्दोलन, महामंदी और प्रांतीय स्वायत्ता। किसान सभा इन लहरों पर सवार होकर लगातार मजबूत होती चली गयी।

अप्रैल, 1935 ई0 में संयुक्त प्रदेश (उत्तर प्रदेश) में प्रान्तीय किसान संघ की स्थापना हुई। इसके बाद एन0 जी0 रंगा एवं नंबदरीपाद ने 'अखिल भारतीय किसान सभा' की स्थापना के लिए प्रयास तेज कर दिया। अप्रैल 1936 ई0 में लखनऊ में सहजानन्द सरस्वती की अध्यक्षता में अखिल भारतीय किसान सभा का पहला अधिवेशन हुआ। सभा ने एक किसान कौंसिल की स्थापना की तथा 'किसान बुलेटिन' नामक पत्र निकालने का निर्णय लिया। अगस्त 1936 में किसान घोषणा–पत्र में किसानों का स्वाधीनता संग्राम में भाग लेने, जमींदारी समाप्त करने, किसानों को जमीन का मालिक बनाने, बेगार प्रथा समाप्त करने एवं लगान की राशि में 5 प्रतिशत कमी करने, जंगल सबंधी अधिकार किसान को देने आदि की मांग रखी गयी। किसानों ने अपनी मांगों के समर्थन में प्रदर्शन किए एवं 01 सितम्बर 1936 को पूरे देश में किसान दिवस मनाय गया।

प्रारंभ में बिहार प्रदेश किसान सभा में किसान समुदाय के आन्तरिक वर्ग विभेद पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया था, तब यह संगठन सम्पूर्ण किसान समुदाय का प्रतिनिधित्व करने के नाम पर धनी व उच्च मध्यम किसानों पर ज्यादा निर्भर रहा। लेकिन 1941 के आते–आते बिहार प्रदेश किसान–सभा के रूख में आया बदलाव जाहिर हो रहा था। खुद सहजानन्द के शब्दों में–'किसान सभा उन शोषित और सताये हुए लोगों की है जिनका भाग्य खेती पर निर्भर करता है,यानि जो खेती पर ही जिंदा रहते हैं जो लोग जितने सताए हुए हैं, वे किसान सभा के उतने ज्यादा नजदीक हैं और किसान सभा भी उतना ही उनके ज्यादा नजदीक हैं और किसान सभा भी उतना ही उनके ज्यादा करीब है।' इतना ही नहीं 1944 में अखिल भारतीय किसान सभा के विजयवाड़ा अधिवेशन में उन्होंने और भी स्पष्ट रूप से कहा– "वे लोग (मंझौले और बड़े काश्तकार) अपने फायदे में कुछ हासिल करने के लिए किसान सभा का इस्तेमाल कर रहें हैं और हमलोग भी सभा को मजबूत करने के लिए उनका इस्तेमाल कर रहें हैं या फिर करने की कोशिश कर रहे हैं। ऐसा तब तक चलता रहेगा जब तक सबसे निचले तबके के किसान अपनी सही आर्थिक और राजनीतिक हितों को नहीं समझ जाते और अपनी जरूरतों को समझकर अपने वर्ग की चेतना नहीं हासिल कर लेते। ऐसे अर्द्ध–सर्वहरा या खेत मजदूर जिनके पास कोई जमीन नहीं है या नाममात्र के जमीन है, ऐसे छोटे काश्तकार जो खेती करके किसी तरह जिंदा रह पाते हैं और कुछ भी नहीं बचा पाते, वे ही हमारे ख्याल से किसान है...और आखिरकार उन्हीं को किसान सभा बनानी है और वे जरूर किसान सभा में आऐंगे।"

स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि बिहार में चले किसान आंदोलनों ने संगठित एवं असंगठित किसानों के भीतर सामंतवाद विरोधी और साम्राज्यवाद विरोधी चेतना का विस्तार–प्रचार किया। किसान आंदोलन चूँकि वर्गीय और राष्ट्रीय आंदोलन था इसलिए उसने वर्ग–संघर्ष और राष्ट्रवाद की प्रतिरोधी चेतना का विस्तार और विकास किया। किसान आंदोलन में संशोधनकारी और क्रांतिकारी दोनों तरह की चेतना का कार्य हुआ। इसका सीधा सबंध सामाजिक वर्गीय संरचना और राष्ट्रीय आंदोलन

की अंतर्विरोधी संरचना से था। किसान आंदोलन ने सामांतवाद मुक्ति आंदोलन को साम्राज्यवाद विरोधी मुक्ति के आंदोलन में एक साथ बदलकर एक साथ वर्गीय और राष्ट्रीय मुक्ति की लड़ाई लड़ी बल्कि राष्ट्रीय मुक्ति के लिए वर्गीय मुक्ति को अनिवार्य कर दिया।

संदर्भ सूची:–

1. प्रमोदानन्द दास एवं कुमार अमरेन्द्र; समकालीन विश्व एवं भारत, भाग–2, पटना, 2010, पृ0 92
2. विनोद मिश्र; "आधुनिक इतिहास में बिहार के किसान" , अभिनव कदम–26, वर्ष–16, अंक–26, दिसम्बर 2011–मई–2012, मऊ उतर प्रदेश, पृ0 421
3. जेड0 ए0 अहमद; "किसान संघर्षों के बारे में अभिनव कदम–26, वर्ष–16, अंक–26 दिसम्बर 2011– मई 2012, मऊ उतर प्रदेश, पृ0 347–372
4. विनोद मिश्र; उपरलिखित, पृ0 421
5. प्रमोदानन्द दास एवं कुमार अमरेन्द्र; उपरलिखित, पृ0 97
6. विनोद मिश्र; उपरलिखित, पृ0 422
7. वही,
8. गवर्नमेंट ऑफ बिहार एंड उड़ीसा, पुलिस एब्सट्रेक्ट, बिहार स्पेशल ब्रांच, 1920
9. डी0 एन0 धनागरे; अग्रेरियन मूवमेंट एंड गांधीयन पॉलिटिक्स, आगरा, 1975, पृ0 29–30
10. बिहार एवं उड़ीसा सरकार पाक्षिक रपट, 1 जनवरी 1920
11. बिहार और उड़ीसा सरकार पाक्षिक रपट, 2 अप्रैल 1920
12. प्रमोदानन्द दास एवं कुमार अमरेन्द्र; उपरलिखित, पृ0 96
13. वही, पृ 99
14. कुमारी सरिता; "बिहार में किसान आंदोलन के बदलते आयाम" विमर्श, भॉलूम–नं0 1, पटना, जून, 2005, पृ0 96–99
15. बी0 उपाध्याय; रीपलाई टू विद्यानंद, पृ0 34–36
16. स्टीफन हेनिंघम; पीजेन्ट मूवमेंट इन कोलोनियन इंडिया, पृ0 197
17. विजय कुमार राय; बिहार एक अवलोकन, दिल्ली, पृ0 40
18. धर्मवीर कुमार; "मिथिला में किसान चेतना के विकास में प्रबुद्ध व्यक्तियों की भूमिका (1920–1950)" अभिलेख बिहार, (पत्रिका), बिहार राज्य अभिलेखागार बिहार, पटना, 2012 पृ0 160
19. प्रमोदानन्द दास कुमार अमरेन्द्र; बिहारः इतिहास एवं संस्कृति, पटना, 2008, पृ0 224
20. कुमारी सरिता; उपरलिखित, पृ0 98
21. वही
22. विनोद मिश्र; उपरलिखित, पृ0 423
23. अवधेश प्रधान; स्वामी सहजानंद और किसान आन्दोलन संवेद, दिल्ली, नवम्बर, 2009 पृ0 7
24. वही
25. विनोद मिश्र; उपरलिखित, पृ0 423